बाल दिवस पर विशेष

बाल संस्कार निर्माण

• ब्रह्माकुमारी उर्मिला, शान्तिवन

आजकल अधिकतर माता-पिता बच्चों के संस्कारों के संबंध में चिंतित नज़र आते हैं। वे बच्चों में ज़िद्द, रोना, रूठना, खाने-पीने की चीज़ों में असंतुष्टता प्रकट करना, बाज़ार निर्मित खाद्य पदार्थों में रुचि लेना, बहुत देर तक टी.वी. देखना, चिड़चिड़ाना, गृहकार्य न करना, चीज़ों की उठा-पटक और माँ-बाप या बुजुर्गों का अपमान करना आदि संस्कारों के होने की शिकायतें करते हैं। थोड़े बड़े बच्चे घर से भाग जाने और आत्महत्या कर लेने तक की धमकियाँ भी देते हैं। संतान की पालना, आज के युग में माता-पिता के लिए कई बार, किसी संकट से कम नहीं जान पड़ती है। जब हम महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी की जीवनी पढ़ते हैं तो वर्णन आता है कि वे महान आत्माएँ जब गर्भस्थ थे तो माँ को कष्ट ना हो, इसलिए हिलते तक भी नहीं थे। उन मातृ-स्नेही महान आत्माओं तथा आज के बच्चों के बीच बड़ी गहरी व्यवहारिक खाई नज़र आ रही है। लेकिन आज भी कभी-कभी कई बच्चे श्रेष्ठ कर्म की करामात दिखाकर बड़ों को आश्चर्यानन्द से भर देते हैं। एक सत्संग में जब प्रसाद बंटने लगा तो एक पाँच साल की बच्ची भी अपनी माँ के साथ आगे आई परंतु उसने अपना हाथ नहीं बढ़ाया। माँ ने टोका तो बोली – पहले मेरे को कुछ दो, मैं दान-पात्र में डालूंगी फिर प्रसाद लूंगी। माँ द्वारा 10 रुपये पाकर, दान-पात्र में डालकर वह प्रफुल्लित हो उठी और फिर प्रसाद ले लिया। यदि हम प्रश्न करें कि 5 वर्ष की बच्ची में यह संस्कार कहाँ से आ गया तो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करने वाले लोगों का यह उत्तर होगा कि पूर्वजन्म के दान-पुण्य के संस्कार ही बच्ची साथ ले आई। इस उत्तर को मद्देनज़र रखें तो अवश्य ही, लेख के प्रारंभ में हमने जिन संस्कारों का ज़िक्र किया था, उन्हें भी वे बच्चे पिछले जन्म से ही लेकर आये होंगे। गहराई में जाने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज जो बड़े हैं उनके जैसे संस्कार हैं, अगले जन्म में बच्चे बनने पर वे उन्हीं संस्कारों का शो करेंगे। अत: समाधान का एक स्वरूप यह है कि आज के बड़े लोग अपने संस्कारों को शांत, शीतल, नम्र, पवित्र, सादगीपूर्ण, प्रेमपूर्ण, त्यागमय बना लें तो आने वाले बच्चे भी सुसंस्कारित होंगे।

विषय का एक दूसरा पहलू भी है। एक माता ने अपना अनुभव सुनाया कि जब मेरी बड़ी बच्ची गर्भस्थ थी तो मैं बहुत भक्ति करती थी। सुबह चार बजे उठना, गीता पाठ करना, देवों की

आरती गाना, घर के काम करते हुए 'ओम नमो शिवाय' मंत्र का जाप करना, भोजन बनाकर ठाकुर को भोग लगाना, किसी को सामने उत्तर ना देना, मन को अशांत या चिड़चिड़ा न होने देना, रात को सोने से पहले सभी देवताओं के चित्रों पर कुछ मिनट ध्यान एकाग्र करके सोना – यह मेरी दिनचर्या थी। इन संस्कारों को लेकर जन्मी मेरी बच्ची इतनी शांत, आज्ञाकारी, सादगीपूर्ण, गृहकार्य में चुस्त, कम खर्चीली, सबको सम्मान देने वाली, गली-मोहल्ले में सबकी दुआएँ लेने वाली सिद्ध हुई। परंतु जब दूसरी बच्ची गर्भस्थ थी तो मैं बदल चुकी थी। रोज़ रात को नॉवेल पढ़कर सोती थी, 12 बजे तक टी.वी. पर मार-धाड़, बलात्कार, हिंसा, फैशन के दृश्य देखती थी, सारा दिन परेशान, अशांत, चिड़चिड़ी, उद्विग्न, असंतुष्ट रहती थी। जिह्वा चटोरी बन

गई थी, फैशन की लगन में बाज़ार के चक्कर लगाती रहती थी। इनके परिणामस्वरूप दूसरी बच्ची जन्म से ही गुस्सैल, चिड़चिड़ी, उठा-पटक करने वाली, अस्थिर, चंचल, रोने, रूठने वाली और कभी-कभी बड़ी बहन की पिटाई तक करने वाली सिद्ध हुई।

एक बार एक माता, अपना कंधा सहलाती हुई सत्संग स्थल पर आई। हम बहनों ने पूछा, कंधे को क्या हुआ? कहने लगी, मेरे आठ वर्षीय बच्चे ने कल गुस्से में आकर यहाँ घूँसा मारा, दर्द अभी तक परेशान कर रहा है। हमने हँसी-हँसी में पूछा, उसने घूँसा मारना कहाँ से सीखा? वह बोली, बहन जी, मैंने तो सिखाया नहीं। हमने कहा, आवश्यक नहीं कि हर बात आप ही सिखाएं। आजकल टी.वी. आदि साधनों पर जो मार-धाड़ परोसी जाती है, बच्चे उसकी आज़माइश, माँ, दादी, बहन आदि पर ही करते हैं। उसने कहा, मेरे घर में तो टी.वी. भी इतना नहीं चलता बहन जी। हमने कहा, फिर अभिमन्यु की तरह गर्भ से ही प्रशिक्षण लेकर निकला होगा। यह सुनकर वह बहन विचारमग्न हो गई परन्तु प्रश्न उस एक का नहीं है, सारे समाज का है। यदि बड़े लोगों के हाथ-पाँव, दृष्टि, वृत्ति, कृति चंचल है तो बच्चों की स्थिर कैसे होगी। अतः सुधार बड़ों का चाहिए।

जैसे कर्म हम करेंगे, हमें देख बच्चे करेंगे

बड़े लोग यह ज़िम्मेवारी लें कि 'जैसा कर्म मैं करूँगा, मुझे देख दूसरे करेंगे।' भारत में 'बेताल पच्चीसी' नाम से एक कथा-शृंखला मिलती है। उसकी एक कथा में एक राजकुमार एक अमर्यादित कर्म करने के लिए उद्यत होता है। इसके लिए उसे घोड़े की ज़रूरत पड़ती है। घोड़े वाला उसे दो घोड़े दिखाता है। पहला घोड़ा बूढ़ा है, उसकी कीमत दस हजार रुपये बताता है और दूसरे जवान घोड़े की कीमत पाँच हजार रुपये बताकर कहता है कि यह तीव्रवेगी तो है पर इसमें एक कमी है कि यह पानी को देखकर रुक जाता है। यह कमी इसकी माँ में भी थी और दादी में भी थी। यद्यपि राजकुमार को जवान घोड़ा पसन्द आ जाता है परन्तु मालिक द्वारा वर्णित उसकी कमी को सुन वह गंभीर हो जाता है। थोड़ा चिन्तन करने के बाद वह घोड़ा खरीदने का विचार छोड़, उस अमर्यादित कर्म को बुद्धि से निकालकर खुशी-खुशी अपने घर लौट जाता है। प्रश्न यह है कि घोड़े वाले की बात ने ऐसा क्या असर कर दिया जो राजकुमार अमर्यादित कर्म से विरक्त हो गया। वास्तव में, घोड़े के मालिक के मुख से यह सुनकर कि पानी से डरने का संस्कार नानी से माँ में और माँ से इस घोड़े में भी आ गया तो उसने सोचा, आज मैं जो अमर्यादित कर्म करने जा रहा हूँ वह संस्कार मेरी संतान में भी अवश्य आएगा। इसलिए संतान को मर्यादित बनाने के लिए पहले मुझे मर्यादित बनना होगा। यह विचार आते ही उसने भटकते मन को संभाल लिया।

उपरोक्त उदाहरण बड़ों को बड़ी भारी ज़िम्मेवारी प्रदान कर रहा है। ज़िम्मेवारी यह है कि श्रेष्ठ और चरित्रवान बालक बनाने के लिए बड़ों को अपनी दिनचर्या मूल्य आधारित बना लेनी चाहिए। **इसमें राजयोग का अभ्यास काफी मदद कर सकता है। राजयोग के द्वारा हम संयमी बन जाते हैं। संयम ही जीवन का सच्चा शृंगार है। जब हमारा मन, ज्योतिस्वरूप परमात्मा में एकनिष्ठ हो जाता है, मगन हो जाता है तो ईश्वरीय सुख का फव्वारा हम पर प्रवाहित होने लगता है। इससे भाव-स्वभाव की सभी नकारात्मक बातें समाप्त हो जाती हैं तथा शांति और आनन्द के स्त्रोत में मन गोता लगाने लगता है।**

राजयोग के कई प्रयोगों से बच्चों का सकारात्मक परिवर्तन होता देखा गया है। एक बच्चा हर प्रकार के खाद्य पदार्थ में कमियाँ निकालकर माँ को परेशान करता था। माँ ने राजयोग सीखना प्रारंभ किया और सेवाकेन्द्र पर आकर अपनी समस्या बताई। उसे कहा गया, जब भी बच्चे को भोजन

परोसो, इस स्मृति में रहो कि मैं आत्मा, परमात्मा के इस प्यारे बच्चे को परमात्मा का प्रसाद खिला रही हूँ। यदि बच्चा किसी खाद्य में कमी निकाले, उसका अपमान करे, ना खाने की ज़िद्द करे तो प्यार से कहो, बेटा, यह प्यारे शिव बाबा का प्रसाद है, प्रसाद प्यार से खाया जाता है, इससे बुद्धि अच्छी बनती है, पढ़ाई अच्छी आती है। माता ने ऐसा ही किया और वह समस्या मुक्त हो गई।

एक अन्य बच्चे को, अपनी कक्षा में प्रथम आने वाले बच्चे से ईर्ष्या और घृणा थी। माता उसे भी लेकर आई। उस बच्चे को बहुत प्यार दिया गया और राजयोग के आधार से सात दिन तक यह पाठ पक्का करवाया गया कि हमारा परिवार बहुत बड़ा है। यह सारा संसार ही हमारा परिवार है। प्रथम आने वाला बच्चा हमारे परिवार का ही है। उसके प्रथम आने पर हमें गर्व है क्योंकि वह भी हमारा भाई है। 'मेरा वह सहपाठी भगवान का बच्चा है, मेरा प्रिय भाई है' – सात दिन ऐसा अभ्यास करके वह बच्चा नफ़रत और ईर्ष्या से मुक्त हो गया। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो रहा है कि माता-पिता और बच्चे अर्थात् परिवार के सभी लोग राजयोग द्वारा संस्कार परिवर्तन कर सकते हैं और स्वभाव के टकराव से उत्पन्न समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं।

❖

सांच बराबर तप नहीं

ब्रह्माकुमार बद्री विशाल, त्रिपाठी नगर, लखनऊ

सांच या सत्य को आमतौर से लोग बहुत ही संकीर्ण अर्थ में प्रयोग करते हैं। सत्य का मतलब वे केवल सत्य बोलना ही समझते हैं। वस्तुत: सत्य को मुखेन्द्रिय के माध्यम से व्यक्त करना मात्र ही पर्याप्त नहीं है। सत्य के पालन में सत्य सोचना, सत्य बोलना और सत्य आचरण करना तीनों ही बातें आती हैं। इस समय संसार में चारों ओर झूठ ही व्याप्त है। सत्य को केवल किताबों की बात समझा जा रहा है। तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में कहा है कि कलियुग में हर कर्म झूठ पर आधारित होगा और इस झूठ के कारण सभी दु:खी और अशान्त होंगे।

'झूठहि लेना, झूठहि देना, झूठहि भोजन, झूठ चबेना'

सत्य और झूठ को यदि हम परिभाषित करें तो सत्य का मतलब है जो सदाकाल रहे या अविनाशी हो और झूठ का मतलब है जो विनाशी हो। 'झूठी काया, झूठी माया, झूठा सब संसार' इसी भाव से कहा जाता है कि काया अर्थात् शरीर और माया अर्थात् विकार – दोनों विनाशी हैं, सदाकाल रहने वाले नहीं हैं। सदाकाल रहने वाले तो मात्र आत्मा और परमात्मा हैं। हम जो हैं, जिसके हैं, जहाँ के हैं, उसको जानें, मानें और तदनुरूप आचरण करें, यही सत्य पर चलना है। हम आत्मा हैं, परमपिता परमात्मा शिव की सन्तान हैं, परमधाम के रहने वाले हैं, इस संसार रूपी रंगमंच पर अभिनय करने आए हैं, नाटक पूरा होते ही हमें अपने घर परमधाम वापस जाना है – इस वास्तविकता को मन-वचन-कर्म से पालन करना ही सत्य का आचरण करना है। इसी को ही तप कहा गया है, इसी को ही धर्म कहा गया है,

'धर्म ना दूजा सत्य समाना, आगम, निगम, पुराण बखाना'

सबसे बड़ा झूठ है अपने को आत्मा न समझकर देह समझना। इसी एक झूठ के कारण ही विकारों की उत्पत्ति होती है और नाना प्रकार के पाप होते हैं। सुख-शान्ति और आनन्द के दाता परमात्मा से हम दूर होते जाते हैं। हमें इस बात को समझना होगा कि

'सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच है, ताके हिरदय आप।।'

हमें केवल आत्मिक स्वरूप में रहने का अभ्यास करना है, यही सबसे बड़ी तपस्या है, साधना है। इसी तपस्या से हम पाप कर्मों से दूर रहेंगे और परमात्मा के निकट ही नहीं रहेंगे बल्कि वे हमारे दिल में बस जायेंगे, जिसे दुनिया वाले पाने के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। इसी एक तप से, साधना से हमारा वर्तमान जीवन सुखी और शान्त होगा, भविष्य श्रेष्ठ होगा और सतयुगी दुनिया की स्थापना होगी।

❖